परम पूज्य गुरुदेव की हिमालय यात्रा से प्राप्त हुई अद्भुत शिक्षा
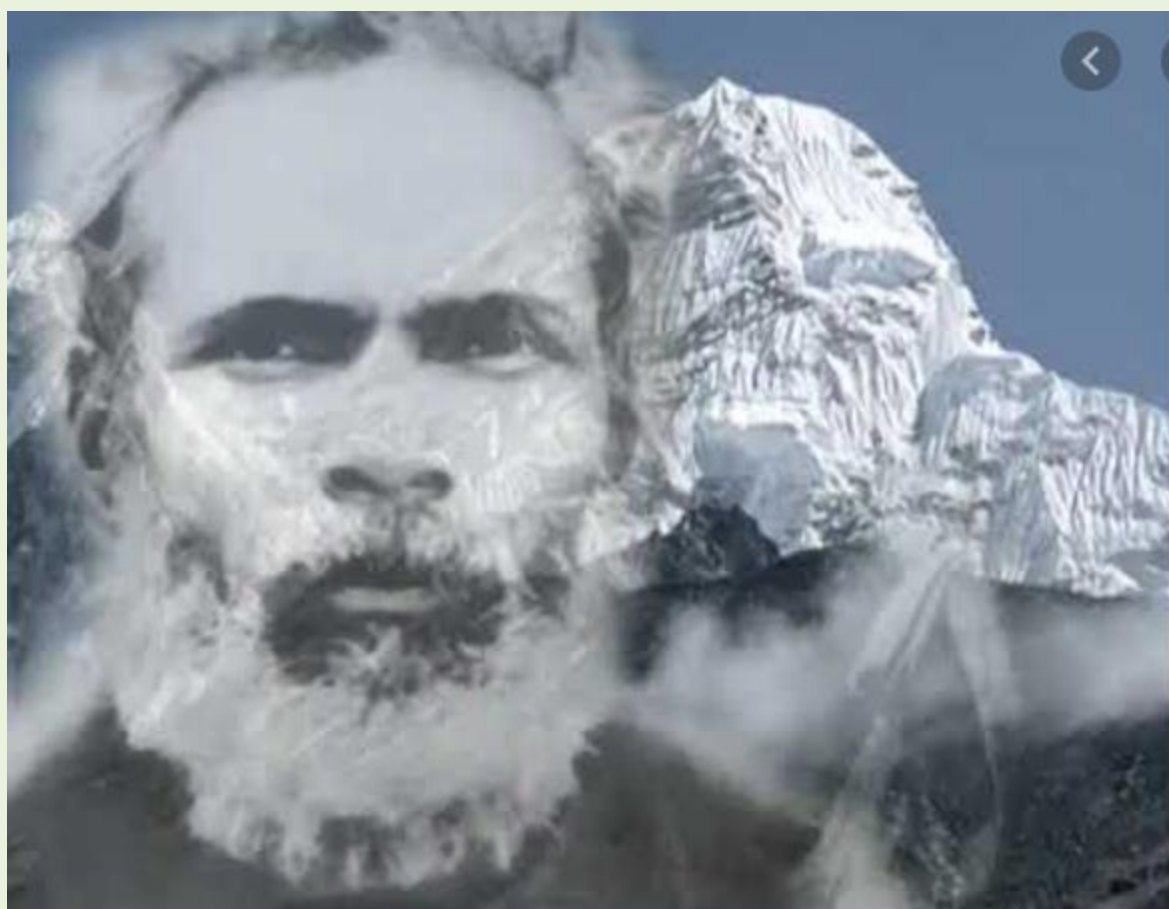
शिला से प्राप्त हुई शिक्षा

शिला की आत्मा बोली:

"साधक,क्या तुझे आत्मा में रस नहीं आता, जो सिद्धि की बात सोच रहा है ? भगवान् के दर्शन से क्या भक्तिभावना में कम रस है ? लक्ष्य प्राप्ति से क्या यात्रा कम आनन्ददायक है ? फल से क्या कर्म का माधुर्य फीका है ? मिलन से क्या विरह में कम गुदगुदी है ? तू इस तथ्य को समझ। भगवान् तो भक्त से ओत-प्रोत ही हैं, उन्हें मिलने में देरी ही क्या ? जीव को साधना का आनन्द लूटने का अवसर देने के लिए ही उन्होंने स्वयं को पर्दे में छिपा कर रखा हुआ है और झाँक-झाँक कर देखते रहते हैं कि भक्त, भक्ति के आनन्द में सरावोर हो

रहा है या नहीं ? जब वह रस में डूब जाता है तो भगवान् भी आकर उसके साथ रस-नृत्य करने लगते हैं।

सिद्धि वह है जब भक्त कहता है, “मुझे सिद्धि नहीं, भक्ति चाहिए।मुझे मिलन ही नहीं, विरह की अभिलाषा है। मुझे सफलता में नहीं, कर्म में भी आनन्द है। मुझे वस्तु नहीं, भाव चाहिए।”

शिला की आत्मा कहती ही गई:

“साधक सामने देख, गंगा अपने प्रियतम से मिलने के लिए कितनी आतुरतापूर्वक दौड़ी चली जा रही है। उसे इस दौड़ में कितना आनन्द आता है। समुद्र से मिलन तो उसका कब का हो चुका है ,लेकिन उसने रस कहाँ पाया ? जो आनन्द प्रयत्न में है, भावना में है, वह मिलन में

कहाँ ? गंगा उस मिलन से तृप्त नहीं हुई, उसने मिलन के प्रयत्न को अनन्त काल तक जारी रखने का व्रत लिया हुआ है, फिर अधीर साधक तू ही उतावला क्यों होता है। तेरा लक्ष्य महान् है, तेरा पथ महान् है, तू महान् है, तेरा कार्य भी महान् है। महान् उद्देश्य के लिए महान् धैर्य चाहिए। बालकों जैसी उतावली का क्या प्रयोजन ? सिद्धि कब तक मिलेगी यह सोचने में, समय और सामर्थ्य नष्ट करने से क्या लाभ ?

शिला की आत्मा बिना रुके कहती रही,उसने आत्म विश्वास पूर्वक कहा:

“मुझे देख, मैं भी अपनी हस्ती को उस बड़ी हस्ती में मिला देने के लिए यहाँ पड़ी हूँ। अपने इस स्थूल शरीर को विशाल शिलाखण्ड को,सूक्ष्म अणु बनाकर उस

महासागर में मिला देने की साधना कर रही हूँ। जल की प्रत्येक लहर से टकरा कर, मेरे शरीर के कुछ कण टूटते हैं और वे रेत के कण बनकर समुद्र की ओर बह जाते हैं। इस तरह मैं मिलन की बूँद-बूँद से विरह का स्वाद ले रही हूँ, तिल-तिल अपने को घिस रही हूँ इस प्रकार "प्रेमी आत्मदान" का आनन्द कितने ही दिन तक लेने का रस ले रही हूँ। यदि उतावले अन्य पत्थरों की तरह बीच जल धारा में पड़कर लुढ़कने लगती तो सम्भवतः मैं कब की लक्ष्य तक पहुँच गयी होती फिर यह तिल-तिल, अपने प्रेमी के साथ घिसने का जो आनन्द है, उससे तो वंचित ही रह गई होती।

उतावली न कर, उतावली में जलन है, खीझ है, निराशा है, अस्थिरता है, निष्ठा की कमी है, है। इन दुर्गुणों के

रहते कौन महान् बन सका है। साधक का पहला लक्षण है- धैर्य !

“धैर्य की रक्षा ही भक्ति की परीक्षा है। जो अधीर हो गया सो असफल हुआ। लोभ और भय के, निराशा और आवेश के जो अवसर साधक के सामने आते हैं उनमें और कुछ नहीं केवल धैर्य परखा जाता है। तू कैसा साधक है, जो अभी इस पहले पाठ को भी नहीं पढ़ा।"

गुरुदेव बताते हैं:

शिला की आत्मा ने बोलना बन्द कर दिया। गहरी नींद से मेरी खुमारी टूटी। यही मेरी साधना का आरम्भ था, गुरुदेव ने अन्तःकरण को झकझोरा और कहा:

"अभी पहला पाठ पढ़ा नहीं और लगा है बड़ा साधक बनने।"

लज्जा और संकोच से सिर नीचा हो गया, अपने को समझाता और धिक्कारता रहा। सिर उठाया तो देखा, सूर्योदय की मनोहर लाली चारों ओर फैल रही है। उठा और नित्य कर्म की तैयारी करने लगा ।

प्रकृति के रुद्राभिषेक

आज भोजवासा चट्टी पर आ पहुँचे। कल प्रातः गोमुख के लिए रवाना होना है। यहाँ यातायात नहीं है, उत्तरकाशी और गंगोत्री के रास्ते में यात्री मिलते हैं। चट्टियों पर ठहरने वालों की भीड़ भी मिलती है, लेकिन वहाँ वैसा कुछ नहीं। आज कुल मिलाकर हम छ: यात्री हैं, सभी अपना-अपना भोजन साथ लाए हैं, यों कहने को तो भोजवासा की चट्टी है, यहाँ धर्मशाला भी हैं, लेकिन नीचे की चट्टियों जैसी सुविधा यहाँ कहाँ है ?

सामने वाले पर्वत पर दृष्टि डाली तो ऐसा लगा मानो हिमगिरि स्वयं अपने हाथों से भगवान् शंकर के ऊपर जल का अभिषेक करता हुआ पूजा कर रहा हो । दृश्य बड़ा ही अलौकिक था। बहुत ऊपर से एक पतली-सी

जलधारा नीचे गिर रही थी। नीचे प्रकृति के निमित्त बने शिवलिंग थे, धारा उन्हीं पर गिर रही थी। गिरते समय वह धारा छींटे-छोटे हो जाती थी। सूर्य की किरण उन छीटों पर पड़कर उन्हें सात रंगों के इन्द्र धनुष जैसा बना देती थी। लगता था साक्षात् शिव विराजमान हैं, उनके शीश पर आकाश से गंगा गिर रही है और देवता सात रंगों से पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। दृश्य इतना मनमोहक था कि देखते-देखते मन नहीं भरता था। उस अलौकिक दृश्य को तब तक देखता ही रहा जब तक अन्धेरे ने इस अद्भुत सीन का पटाक्षेप नहीं कर दिया।

सौन्दर्य आत्मा की प्यास है,लेकिन वह बनावट के कीचड़ में कहाँ सम्भव है ? सौंदर्य से भरपूर पर्वतों के चित्र बनाकर लोग अपने घरों में टाँगते हैं और उसी से

सन्तोष कर लेते हैं,लेकिन प्रकृति की गोद में जो सौन्दर्य का निर्झर बह रहा है उसकी ओर कोई आँख उठाकर भी नही देखता। यहाँ तो जगह-जगह सौन्दर्य बिखरा पड़ा था। हिमालय को "सौन्दर्य का सागर" कहते हैं। उसमें स्नान करने से आत्मा में,एक सिहरन सी उठती है, जी करता है इस अनन्त सौन्दर्य में स्वयं खो ही क्यों न दिया जाय ?

आज का दृश्य तो प्रकृति का एक चमत्कार ही था,अपनी भावना उसमें एक दिव्य झाँकी का आनन्द लेती रही, मानो साक्षात् शिव के ही दर्शन हुए हों।

गुरुदेव लिख रहे हैं:

इस आनन्द की अनुभूति में आज अन्तःकरण गदगद होता जा रहा है। काश ! ऐसे रसास्वादन को एक अंश में लिख सकना मेरे लिए सम्भव हुआ होता, ताकि जो यहाँ नहीं हैं, वे भी इस सुख का आनंद पाते और अपने भाग्य को सराहते।